ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 151-154
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

वर्ण व्यवस्था और दलितवादी परिप्रेक्ष्य का तुलनात्मक विश्लेषण

डॉ0 वन्दना दीक्षित
एसो0 प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग, ज्वालादेवी विद्या मन्दिर पी0जी0 कालेज आनन्द बाग, कानपुर (उ0प्र0), भारत

Received- 18.11. 2021, Revised- 25.11. 2021, Accepted - 29.11.2021 E-mail: vandanadixit495@gmail.com

सारांशः ***वर्ण व्यवस्था में 'शूद्र' प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी, किन्तु शुद्रों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और नैतिक जीवन से संबंधित जितने भी नियम थे सभी नीचता प्रदर्शित करने वाले थे। वास्तव में देखा जाए तो 'वर्ण' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में सबसे पहले प्रयोग किया गया है। इससे पहले केवल 'आर्य' और 'दास' दो वर्णों का ही वर्णन् मिलता है। ऋग्वेद में समाज के वर्णों के विभाजन का ही उल्लेख कर्मों के आधार पर मिलता है जैसे– ब्राह्मण (वेद मंत्रों को उच्चारण करने वाला) क्षत्रिय (प्रजा की रक्षा तथा युद्ध के लिए), विस (वैश्य)– सामान्यजन/ चौथी योद्धा व्यवस्था 'शूद्र' का वर्णन इसमें नहीं मिलता है। फिर भी आर्यों के द्वारा घृणा किये जाने वाले समूहों में – 'आयोजन', 'चाण्डाल' तथा 'निशाद' शब्दों का वर्णन मिलता है।***

कुंजीभूत शब्द– वर्ण व्यवस्था, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, नैतिक जीवन, संस्तरण, हिन्दू सामाजिक संगठन, शुद्र।

प्राचीन भारतीय इतिहास की ही तरह भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था लगभग विलुप्त तथा पूर्ण परिवर्तित स्वरूप में विद्यमान है जिसे हम जाति–व्यवस्था कहते है। ऐसा इसलिए कि दोनों में संस्तरण अर्थात उच्चतर से निम्नतर का एक क्रमबद्ध विभाजन देखने को मिलता है। जाति और वर्ण दोनों भिन्न धारणायें है। सेनार्ट प्रथम व्यक्ति था जिसने यह बताया कि जाति व वर्ण समान नहीं है। हिन्दू सामाजिक संगठन की विशिष्टता यह है कि यह 'वर्तमान' व्यवस्था पर आधारित है। यद्यपि 'वर्ण' व्यवस्था तथा 'आश्रम' व्यवस्था दो अलग–अलग संगठन है। फिर भी वे एक साथ है, क्योंकि वे मनुष्य की प्रकृति व पालन–पोषण की समस्याओं के विषय में बताते है। वर्ण–व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव के अनुसार काम करने की स्थिति का निर्देश देती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की उसके निजी स्वभाव एवं प्रकृतियों के सन्दर्भ में अपने समूह में स्थिति पर विचार किया जाता है। जबकि दलितवादी परिप्रेक्ष्य में ऐसा नहीं है।

वर्ण व्यवस्था के षूद्र वर्तमान के दलित अथवा अनुसूचित जाति/जनजाति के रूप में जाने जाते है। इसलिए वर्तमान में दलित विमर्श को दलित परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत किये जाने वाले अध्ययनों से जोड़ा जाता है। दलित शब्द का अर्थ दबाये गये, कुचले गये, पीड़ित किये गये, विपत्तीग्रस्त, शोषित अथवा प्रताड़ित व्यक्ति से है तथा इस अर्थ में तथाकथित जाति–विशेष, वर्ग विशेष की कोई अवस्थिति नहीं है। किन्तु दलित जाति को शोषित जाति से जोड़कर देखा जाता रहा है।

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोध–पत्र विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति का है। शोध पत्र के लिए मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों को आधार बनाया गया है। इसके लिए प्रकाशित ग्रन्थ, विभिन्न प्रकार के पत्र–पत्रिकाओं में छपें आलेख, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध कार्यों आदि का भी सहयोग लिया गया है।

विभिन्न कालों में वर्ण–भेद के स्वरूपों के अध्ययनों की विवेचना– विभिन्नकालों (युगों) के वर्ण–भेद की समस्या से निजात पाने के लिए कई ज्ञात और अज्ञात विद्वानों, यथा ऋषियों, महात्माओं तथा समाज सुधारकों के द्वारा समय–समय पर अपने स्तर पर प्रयास किये गये। जिनमें कुछ सफलताऐं और कुछ विफलतायें प्राप्त हुयी जिसकों हम निम्नलिखित बिदुओं के आधार पर विवेचित कर समझ सकते है–

वर्ण व्यवस्था : मिथक और ऐतिहासिक विकास– सामाजिक व्यवस्था में चार वर्ण का उल्लेख हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। विद्वानों में इस बारे में मतभेद है कि जाति व्यवस्था चर्तुवर्ण की परिणती है या कि यह अलग से विकसित होकर कलान्तर में वर्ण व्यवस्था ने निभाई भी है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो0 जी.एस. धुर्ये ने इन परिवर्तनों को चार कालखण्डों में विभाजित किया है– (क) वैदिक युग (ख) वैदिकोत्तर युग (ग) धर्म शास्त्र युग (घ) आधुनिक युग।[1]

(क) वैदिक युग वर्ग व्यवस्था का प्रार्दुभाव– प्राचीन भारतीय साहित्य में यह मान्यता रही है कि आरम्भ में सिर्फ तीन ही वर्ण थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। कालांतर में इसमें चौथा वर्ण शूद्र भी जुड़ गया। वर्ण व्यवस्था को समाज संगठन का स्थायी आधार बनाये रखने के लिए ऋग्वेद का "पुरूष सूक्त" उद्धृत किया गया है। इस युग के अनुसार वर्णो की उत्पत्ति विराट पुरूष से हुई है। उस पुरूष के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय, उरू (जांघ) से वैश्य तथा पद (पैर) से शुद्र पैदा हुए।[2]

आरम्भ में वर्ण विभाजन जन्मजात नहीं था। वह एक प्रकार का श्रम विभाजन ही था उसमें यह कठोरता नहीं थी जो बाद में वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था की अभिन्न, विशेषताएँ बन गयी। फ्रांसीसी संस्कृतज्ञ लुई रेन के अनुसार "वर्ण जातियाँ नहीं थी वर्ण लोगों के ढ़ीले–ढ़ाले गुट थे। इन गुटों को आन्तिरक संगठन और किसी प्रकार की ऊँच नीच नहीं थी। इनमें

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

धीरे–धीरे तथा आशिंक रूप में सख्त नियम पनपे। बाद में यह नियम अधिक कठोर हो गये थे जो जाति व्यवस्था के परिचायक बन गये।"[3]

(ख) वैदिकोत्तर युग : वर्णों का रूपान्तर– इस युग के विधि–निर्माताओं में वर्ण भेद का आग्रह इतना प्रबल था कि उन्होंने अतिथि से कुशलक्षेम पूछने की भाषा भी वर्णों के अनुसार निर्धारित कर दी थी। यदि अतिथि ब्राह्मण वर्ण का है तो उससे सिर्फ 'कुशल' ही पूछनी चाहिए क्षत्रिय वर्ण के अतिथि से कुशल पूछते समय "अनामय" शब्द प्रयुक्त करना चाहिए। वैश्य तथा शुद्र अतिथि से उसके 'अरोग्य' के संबंध में पूछना चाहिए। इतना ही नहीं, अतिथियों को किस क्रम में भोजन कराया जाए, इसका भी सुनिश्चित विधान था। ब्राह्मण अतिथि सबसे पहले अपने ब्राह्मण अतिथि भोजन कराये और उसके बाद क्षत्रियों को भोजन परोसा जाए। उसके बाद बाकी वर्णों के अतिथियों और नौकर चाकरों को।[4]

सामाजिक विकास के साथ व्यवसाय धंधे भी बढ़ रहे थे। उन सब को चार वर्ण में रखना ब्राह्मण शास्त्रकारों के लिए भी असान नहीं रहा होगा। इस आधार पर कतिपय विद्वानों ने व्यावसायिक संघों से ही जाति व्यवस्था का उद्भव माना है, कहना है कि आरंभ में व्यवसायिक संघ ढ़ीले–ढाले होंगे किन्तु बाद में जातिया भी वर्णों की तरह ही अपना आरंभिक लचीलापन खोने लगी।[5]

(ग) बौद्धकाल : ब्राह्मण श्रेष्ठता को चुनौती– वैदिकोत्तर काल में एक ओर ब्राह्मण बर्चस्व के अन्तर्गत भेद परख व्यवस्था उत्तरोत्तर सुदृढ हो रही थी तो दूसरी ओर उसके विरोध की भूमिका तैयार हो रही थी। इस विरोध के प्रवक्ता थे महावीर और गौतम बुद्ध। दोनों ही क्षत्रिय थे दोनों ने ही यज्ञ पर आधारित कर्मकाण्ड का निषेध किया दोनों ने विद्वानों की भाषा संस्कृत के बजाय लोकभाषा प्राकृतों को अपने उपदेशों और संदेशों को माध्यम बनाया। जैन और बौद्ध में जाति एवं वर्ण संबंधी उल्लेखों की व्याख्या को लेकर आज भी विद्वान एकमत नहीं है। डॉ0 जी0एम0 घुर्ये का मत है कि "महावीर और बुद्ध के मूल उपदेशों में जाति के बारे में जो कुछ कहा गया हो।" किन्तु इन धार्मिक आन्दोलनों के आरंभिक साहित्य का गंभीर विद्यार्थी यह महसूस करेगा कि इनके लेखकों का मुख्य ध्येय क्षत्रियों के प्रधानता पर बल देना है।[6]

बौद्ध काल में अस्पृश्यों तथा कथितहीन जातियों के साथ भेदभाव नहीं बरता जाता था। वास्तव में मातंग तो अपवाद है। बौद्धकाल में बौद्ध राजाओं के भी शासन में साधारण शुद्र और उनसे भी अधिक चंडाल जैसे अस्पृष्यों को दीनहीन जीवन जीना पड़ता था। चंडाल को नगर प्रवेश के लिए अनुमति लेनी पड़ती थी। वह नगर सीमा के बाहर ही अपनी कला के कर्त्तव्य दिखा सकता था। यह समझा जाता था। कि उसके उपस्थिति से हवा भी दूषित हो जाती है।[7]

(घ) ज्योतिराव फूले : सांस्कृतिक क्रांति के अग्रदुत– ज्योतिराव जाति से माली थे। जाति व्यवस्था के पिरामीड में मालियों का स्थान काफी नीचे रहा है। वे मुख्यतः बागवानी अथवा खेती बाड़ी करते हैं। फूले आधुनिक भारत में पिछड़ी और उत्पीड़ित जातियों में उभरे प्रथम बुद्धिजीवी थे।[8]

ज्योतिराव के जन्म से दस वर्ष पहले ही महाराष्ट्र में पेशवाई राज्य समाप्त हुआ था लोगों के मन पर पेशवाई के आखिरी दौड़ में अवर्णों तथा अछूतों पर हुए अत्याचारों की यादें ताजा थी वे यह भी नहीं भुले थे कि उनके समाज में शुद्रों, अछूतों और स्त्रियों की अत्यधिक दुर्दशा थी। शिक्षा ब्राह्मणों और अन्य ऊँची जातियों तक ही सीमित थी। अछूतों को बस्तियों में आने से पहले वे सब उपाय बरतने पड़ते थे जो असहनीय है।

फुले आरंभ से ही ईश्वर और मनुष्यों के बीच किसी भी मध्यस्थ कि परिकल्पना के विरोधी थे उन्होंने इस नये धर्म को मध्यस्थ से दूर रखा। दरअसल सत्यधर्म को स्वीकार करने वाले के संगठन 'सत्य शोधक समाज' का घोस वाक्य ही था– सर्वसाक्षी जगत्पति, नहीं चाहता बिचवई।"[9]

दलितवादी परिप्रेक्ष्य :– भारत में समाजशास्त्रीय अध्ययनों में अनेक परिपेक्ष्यों को अपनाया गया है। इन परिप्रेक्ष्यों में से एक अधीनस्थ परिप्रेक्ष्य जिसे दलितोंद्वार परिप्रेक्ष्य भी कहा जाता है, प्रमुख परिप्रेक्ष्य है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में सबआर्ल्टन का अर्थ है अधीनस्थता आदिवासी तथा किसान आंदोलनों को समझने के लिए यह उपागम काफी महत्वपूर्ण है। अधीनस्थ परिप्रेक्ष्य एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह दृष्टिकोण अपना स्वयं का इतिहास रचनें का प्रयास है। इस परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विद्वानों में डेविड हार्डिमेन, बी0आर0 अम्बेडकर, रणजीत गुहा, कपिल कुमार और गेल ओमवेट इत्यादि प्रमुख हैं। यह परिप्रेक्ष्य समाज में दलित वर्गों का अध्ययन कर उनका उद्धार एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक उत्थान करने पर बल देता है।

दलित गतिशीलता पर किये गये राम आहुजा के अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि दलित परिवारों और व्यक्तियों में ऊर्ध्व सामाजिक गतिशीलता की कुछ प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं और कुछ दलित उच्च प्रशासनिक पदों पर भी आसीन हैं फिर भी मोटे तौर पर दलितों ने प्रथम पांच दशेकों में कम प्रगति दर्शायी है। इन लोगों के लिए बनायी गयी अनेक कल्याणकारी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

योजनाओं के विशय में सांस्कारिक औपचारिकता है। वित्तीय प्रोत्साहनों और शैक्षिक आरक्षणों ने इन जातियों को बहुत कम वास्तविक लाभ पहुँचाया है।[10] 1991 में देश की कुल जनसंख्या के 16.48 प्रतिशत शक्ति के साथ तथा 15 प्रतिशत आरक्षण के सहित, सेवाओं में उनके लिए सुरक्षित स्थानों का लाभ दलित नहीं उठा सके हैं। यदि एस0सी0/एस0टी0 आयुक्त की रिपोर्ट तथा एस0सी0/एस0टी0 के राष्ट्रीय आयोग, जो सरकारी कार्यालयों एवं सार्वजनिक संस्थानों की नीतियों के क्रियान्वयन का संचालन करता है कि रिपोर्ट तथा एकत्रित आंकड़ों का अध्यापन करें तो पता चलता है कि केन्द्रीय सरकारी विभागों, सार्वजनिक संस्थानों और राष्ट्रीयकृत बैंकों में 1993 में आरक्षण समूह ए के पदो ंके लिए 7 से 10 प्रतिशत, समूह 'बी' पदो ंके लिए 9 से 14 प्रतिशत, समूह 'सी' के लिए 13 से 19 प्रतिशत तथा 'डी' समूह के लिए 21 से 23 प्रतिशत था।11 यद्यपि 1965 से आगे निःसंदेह सभी श्रेणियों के पदों में एस0सी0 सदस्यों की भर्ती की स्थिति में सुधार हुआ है लेकिन 'ए' और 'बी' के पदों में सन्तोषजनक प्रगति नहीं हुई है, जबकि समूह 'डी' में कुल पद निर्धारित मात्रा से भी आगे निकल गये हैं और समूह 'सी' में वे निर्धारित मात्रा में निकट है। (15 प्रतिशत)। 'ए' और 'बी' समूह के सभी पद पूर्ण मात्रा में इसलिए नहीं भर पाते क्योंकि 'अहं' प्रत्याशी उपलब्ध नहीं होते। केन्द्र व राज्य सरकारों के आधीन विभिन्न पदो ंके लिए आवेदन करने की योग्यता के लिए कुछ आधारभूत शैक्षिक योग्यता आवश्यक होती है। 1991 में एस0सी0 की साक्षरता 34.41 प्रतिशत थी हाईस्कूल स्तर पर दलितों का पास होने का औसत 53 प्रतिशत है। प्राथमिक से लेकर हाईस्कूल तक नामांकन का प्रतिशत मात्रा 15 प्रतिशत है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दलितों में गतिशीलता अभी अपेक्षाकृत गति नहीं पकड़ पायी है। वर्ष 1931 के बाद वर्ष 2011 में पहली बार सामाजिक–आर्थिक, और जातिगत जनगणना करायी गयी। जिसका उद्देश्य वंचित वर्गों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना था।

हिन्दू धर्म की कुरीतियों एवं भेदभाव के खिलाफ आर्य समाज ने आवाज उठायी। इससे दलित, आर्य समाज की ओर आकर्षित हुए। जिसके स्वामी अछूतानन्द हरिहर प्रमुख थे। उन्होंने दलितों को भारत का आदि हिन्दू बताया। स्वामी अछूतानन्द के प्रयासों से दलितों की विभिन्न जातियों में चेतना का संचार हुआ एवं सभाएँ बनने लगीं। चमार जाति के लोगों ने चमार महासभा, रविदास महासभा, जाटव महासभा, लखनऊ के आसपास पासियों ने पासी महासभा, धोबियों ने धोबी महासभा, बाल्मीकि महासभा इत्यादि का गठन किया। ये सभाएँ अपनी–अपनी जातियों को बुरे रीति–रिवाज, बाल–विवाह, शराब छोड़ने, लड़कों को पढ़ाने और स्वच्छता से रहने की सलाह देती थी। दलित जाति के सुखदेव भगत (1840–99) और निर्धिन राम (1920–1957) ने बलिया, गाजीपुर और बिहार के शाहांबाद छपरा जिलों में घूम–घूम कर अपने लोक गीतों से दलितों में चेतना भरने का सराहनीय कार्य किया।[12]

इसी बीच स्वामी अछूतानंद समर्थक डॉ0 अम्बेडकर के शेडयूल्ड कास्टस फेडरेशन में शामिल हो गये और दलित समस्याओं पर आन्दोलन चलने लगे। तिलक चन्द्र कुरील कानपुर प्रदेश के अध्यक्ष बने। उ0प्र0 में आगरा, लखनऊ इलाहाबाद, कानपुर इसके केन्द्र बने अनेक दलित समाज के लोग सामने आये। डॉ0 अम्बेडकर के आगरा कानपुर और लखनऊ दौरों का दलितों पर विशेष प्रभाव पड़ा। लखनऊ में चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर महत्वपूर्ण योगदान दिया। महाथेर बोधानन्द, रामचरन निशाद, छेदीलाल साथी, गयाप्रसा, शिवदयाल चौरसिया, बदलू राम रसिक, इलाहाबाद में राय साहब श्यामलाल, पहाड़ी भाग में रायसाहब ने इस आन्दोलन में विशेष योगदान दिया।[13]

शिक्षा के क्षेत्रो में उत्तरोत्तर प्रगति ने दलितों की मुख्य प्रगति को प्रषस्त किया। डॉ0 अम्बेडकर ने 1954 में फेडरेशन के द्वारा चुनावों में दलितों के हितों की रक्षा का प्रयत्न किया। ये हित रक्षा नौकरियों में आरक्षण और राजनैतिक स्थितियों को सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न तक ही सीमित रह गई। 1956 में यह फेडरेशन रिपब्लिकन पार्टी में परिवर्तित हो गया। इसका उद्देश्य व्यवस्थित आधार प्रदान कर इसमें अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियों को सम्मिलित कर इसमें गतिशीलता प्रदान करना था।

कोहन द्वारा पूर्वी0 उ0प्र0 के सेनपुर गांव के जैसवार चमारों में इसी प्रकार की प्रवृत्ति का अध्ययन किया गया है। सबसे पहली समस्या जाटवों में जाग्रति उत्पन्न करना था। इसके द्वारा वे जाति की नई परिभाषा से परिचित हुए और समाज में सम्मान के लिए नहीं वरन् जाति के लिए ऊँची स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे।[14]

उत्तर भारत में बुद्धप्रिय मौर्य, संघप्रिय गौतम, कांशीराम और मायावती जैसे नेताओं ने महात्मा फुले, बाबा साहब अम्बेडकर से ही सामाजिक परिवर्तन और दलित क्रांति का पाठ पढ़ा। यद्यपि न नेताओं के विचार और कार्यशैली अलग रही, मौर्य और गौतम क्रमशः आर0पी0आई0, कांग्रेस, भाजपा में रहे। कांशीराम ने डी0एस0फोर बाद में बहुजन समाजपार्टी संगठित की और सुश्री मायावती को सत्ता की कुर्सी पर आसीन किया।[15]

दलित आंदोलन के कारण दलितों ने अपनी वंचना और उसको दूर करने की चेतना के भाव जाग्रत हुए। इसके

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

फलस्वरूप दलित वर्ग से जुड़े हुए राजनैतिक दलों का गठन होना शुरू हुआ। उ0प्र0 में दलितों का मत परम्परागत रूप से कांग्रेस और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया को जाता रहा। किन्तु 1960 के बाद यह एक तरफा कांग्रेस को मिलने लगा। 1967 के चुनाव में कांग्रेस को दलितों के 45.2 प्रतिशत मत मिले, जबकि 1971 में 47.1 प्रतिशत, 1980 में 52.8 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। जनता पार्टी 1977 एवं जनता दल 1989 के गठन के पश्चात दलितों को एक विकल्प मिला। किन्तु बहुजन समाजवादी पार्टी की स्थापना के पश्चात दलित स्थाई तौर पर उसे ही अन्य गैर राजनीतिक दलों के विकल्प के रूप में देखते हैं।[16]

दलित नेतृत्व ने जहाँ राजनीतिक सामाजिक संघर्ष करके समाज में भेदभाव एवं शोषण को खत्म करने का प्रयास किया वहीं स्वतंत्रता के बाद शिक्षित दलित बुद्धिजीवियों एवं दलित विद्वानों ने जो समाज में भेदभाव के दंश के भुक्तभोगी थे उन्होंने आन्दोलनों के द्वारा जन जागरण का कार्य किया।

प्रथम्मा, सी0 (1986) गुरूनानक जनरल ऑफ सोशलॉजी में यल ऑफ प्रोटेस्ट मूवमेन्टस् इन सोषल ट्रान्सफॉरमेशन में दलित विरोध के द्वारा सामाजिक परिवर्तन की ऐतिहासिक झलक दिखाई गयी है।

ओमवेट गैल (1980) सोशियोलोजिकल बुलेटिन जनरल में कास्ट ऑग्रेइअन रिलेशन एण्ड ऑग्रेइअन कॉनलिक्ट में संघर्ष के दो प्रकार बताये हैं– (1) जमींदार और विकास के बीच (2) दलित मजदूरों की मजदूरी, जमीन स्वतंत्रता। मजदूरी और जमीन के कारण सरकार के अन्तर्गत और न्याय का कारण प्रादेशित स्तर के संगठनों के अन्तर्गत आता है।

निष्कर्ष– अतः जो भी हो पर वास्तविक रूप से भारत में प्राचीन काल से वर्ण व्यवस्था से लेकर वर्तमान समय तक दलितों से भेदभाव एवं अवसरों की असमानता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से बौद्ध एवं जैन धर्म के माध्यम से सामाजिक समरसता का संदेश दिया गया। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के द्वारा इस प्रक्रिया को और गति प्रदान की गयी। 18वीं शताब्दी के पुनर्जागरण से दलितों में चेतना एवं जागरूकता का संचार हुआ और विभिन्न दलित नेताओं ने परम्परागत रूप से बनाई गई शोषणकारी व्यवस्था की खुलकर आलोचना की। इस प्रकार महात्मा बुद्ध से लेकर 'कबीर', ज्योतिबाफुले एवं अम्बेडकर के महती प्रयासों से दलित आन्दोलन प्राचीन बेड़ियों को तोड़ते हुए अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। इसी क्रम में सम्पूर्ण भारत में भी दलितोत्थान का कार्य भी जोर–शोर से चल रहा था। भारत में अनेक ऐसे दलित नेताओं का उद्भव हो चुका था जो अपने समाज के प्रति जाग्रत हो चुके थे। इसी बीच उत्तर–प्रदेश में महात्मा गांधी, ज्योतिराव फूले, दयानन्द सरस्वती, अम्बेडकर, काशीराम, मायावती आदि नेताओं ने तथा डेविड हार्डिमैन, गेल ओमवेट, रणजीत गुहा आदि समाजशास्त्रीयों ने भी सम्पूर्ण भारत में अपने सम्मेलनों तथा कार्यों द्वारा दलितों को चेतना प्रदान की। आज आवश्यकता है शिक्षा जागरूकता की जो प्राचीन वर्ण व्यवस्था में नहीं थी, आज दलित शिक्षा के माध्यम से राजनैतिक रूप से संगठित होकर एक नवीन राष्ट्र के निर्माण में सहायक हो सकेगें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. धुर्ये, जी0एस0, कॉस्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, पृ0 43.
2. ऋग्वेद 10.90.12.
3. रेन, लूई– 'दि सिविलाईजेषन ऑफ एंशेट' इंडिया, अनु0 स्प्राट, सुषील गुप्ता– पृ0 42.
4. हुर्ये, जी0एस0, कॉस्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, पृ0 77.
5. नेसफील्ड, ब्रीफ व्यु ऑफ द कास्ट सिस्टम, पृ0 7.
6. धुर्ये, जी0एस0 उपर्युक्त, पृ0 137.
7. मिश्र, जयशंकर – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 66.
8. राय, एस, फ्राम टु अम्बेडकरः दि अनएकोपिलष्ड रिवोल्यूशन, पृ0 380.
9. जगताप, मुरिलधर – युगपुरूष महात्माफूले, पृ0 83.
10. चन्द्रा, आर0 चंचरीक एवं कन्हैया लाल, आधुनिक काल का दलित, 2003, पृ0 365.
11. Bhargava B.S. & Avinash samal Protectine Disiriminalion & Development of Scs " in India lomou as buhar act Ministration, July Scpt 1998 Vol. XL. IV. N03513.
12. अहूजा, राम, भारतीय समाज, 2013, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 75.
13. प्रसाद, माता, भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत, 2015 पृ0.
14. आर, चन्द्रा, चचंरीक एवं कन्हैया लाल, आधुनिकाल के दलित, 2003, पृ0 99.
15. वहीं, पृ0 85.
16. पाई, सुधा, 'न्यू सोशल पॉलिटिक्स मूवमेंट ऑफ दलित : ए स्टडी ऑफ मेरठ डिस्ट्रिक, पृ0 154.

*****